अध्याय अष्टम्

अष्टम् अध्याय

शिवपुराण में वर्णित शिक्षा, साहित्य एवं विज्ञान

शिक्षा– प्राचीन भारतीय शिक्षा का विकास भी भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुरूप हुआ है और यही कारण है कि हमारे ऋषिमुनि इस भौतिक जगत् को गंभीरतापूर्वक नहीं ले सके और उनकी सभी प्रवृत्तियां बाह्य विकास की ओर न होकर आन्तरिक जगत् के सृजन और विकास में लग गयी। इस प्रकार शिक्षा–उद्देश्य की चित्तवृत्त निरोध हो गया।

प्राचीनकाल में विद्यार्थी इस जगत् की सम्पूर्ण विप्लव और विद्रोह से परे प्रकृति की रमणीय गोद में अपने गुरु चरणों में बैठ कर जीवन की समस्याओं का श्रवण, मनन और चिन्तन करता था। विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए गुरु–गृह में निवास करता था। इसके अनेक उदाहरण वेदों, महाकाव्यों एवं पुराणों में मिलते हैं। रामायण में राम, लक्ष्मण तथा महाभारत में पाण्डवों एवं कौरवों ने गुरु–गृह में ही सभी प्रकार की शिक्षाएं पायी थी। शिवपुराण में भी हमें इसके उदाहरण मिलते हैं। विद्यार्थी गुरुकुल में विद्या प्राप्ति काल तक स्थायी रूप से निवास करता था। मनु पुत्र नभग विद्याध्ययन के लिये गुरु–गृह में जाता है।[1] पर दूसरे स्थान पर हम पाते हैं कि पाठशालाओं की परम्परा भी पुराण काल में शुरु हो चुकी थी और समृद्ध नगरों में जगह–जगह बनी होती थी। त्रिपुर में अध्ययन, अध्यापन के लिये ऐसी ही पाठशालायें बनी हुई थीं।[2] हालांकि यह

---

[1] श0 रु0 सं0 5/29

[2] रु0 सं0 यु0 खं0, 1/68

विवरण राक्षस राजाओं के नगरों के लिये आया है। एक प्रसंग में गुणनिधि की माता कहती है कि वह पढ़ने गया है, कभी कहती है कि पढ़ाने गया है।[1] यह तथ्य प्रकट करता है कि पढ़ने–पढ़ाने के लिये कोई निश्चित स्थान अवश्य रहा होगा। जहां गुणनिधि पढ़ने जाता होगा। साथ में उसके मित्र भी होते थे। इससे सिद्ध हो जाता है कि पढ़ने–पढ़ाने के लिये पाठशालायें एवं विद्यालय नामक संस्था कायम हो चुकी थी।

गुरु को बड़ा ही सम्मान दिया जाता था उसे ईश्वर का दूसरा रूप समझा जाता था। गुरु की कृपा से अलभ्य की प्राप्ति हो सकती है – ऐसा विश्वास था। शंभु जो द्विज के वेश में थे, हिमालय से कहते हैं कि मैं गुरु की कृपा से सर्वगामी एवं सर्वज्ञ हूँ।[2] गुरु के अनुग्रह से ही ब्रह्म का ज्ञान होता है। पार्वती एक स्थान पर कहती है कि मैं गुरु की कृपा में ब्रह्म को पहचानती हूँ।[3] गुरु का समाज में बहुत ऊँचा स्थान था। राजा भी अपने गुरु को सिंहासन से उठकर नमस्कार करता था।[4] परन्तु इतना होते हुए भी शिवमहापुराण में ऐसा आदेश दिया गया है कि सत्य से पवित्र अन्तःकरण वाले ज्ञानी ब्राह्मण को ही गुरु बनना चाहिए।[5] क्योंकि अज्ञान को समाप्त करना ही गुरु का साध्य है।[6] जो गुणों का रोध करता है, वही गुरु है[7] अर्थात् जो मनुष्य में उत्तम गुणों का समावेश करता है, वही गुरु कहलाता है। शिवमहापुराण में गुरु की आवश्यकता पर बड़ा ही बल दिया गया है क्योंकि गुरु से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और

---

[1] रु0 सं0, 17/15
[2] श0 रु0 सं0, 35/24
[3] रु0 सं0, पा0 ख0, 67/25
[4] रु0 सं0, यु0 ख0, 15/3
[5] वि0 सं0, 41/11
[6] वही, 18/77, 78
[7] वही, 18/83

ज्ञान से शिव प्राप्त होते हैं। एक स्थान पर उमा नारद से कहती हैं कि तद्गुरु के बिना किसी की कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती।[1]

गुरु और पुरोहित अलग–अलग व्यक्ति होता था।[2] शिवमहापुराण के अनुसार दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य[3] तथा देवताओं के गुरु बृहस्पति हैं। ये गुरु राजकार्य में विशेष अवसरों पर राजा को यथोचित मन्त्रणा देते थे। पुरोहित वैवाहिक विधि–विधान एवं याज्ञिक कर्मकाण्ड सम्पादित करवाते थे।

गुरु शिष्य को जो ज्ञान देते थे, उसके बदले में शिष्य शिक्षा समाप्ति के अवसर पर गुरु को दक्षिणा देता था। यह दक्षिणा अन्न, धन, वस्त्र सेलेकर अपना प्राण हो सकता था। एक स्थान पर ऋषियों के द्वारा शिवमहापुराण सुनने के बाद सूतजी सभी को प्रणाम कर यथा–शक्ति दक्षिणा देते हैं।[4] तत्कालीन समाज में गुरु का महत्व ब्रह्मा द्वारा ऋषियों और देवताओं से कहे गये इन पंक्तियों से प्रकट होता है – गुरु–पादुकाओं का स्मरण कर ही नित्य कर्म के लिये उठना चाहिए। गुरु–शरीर की पूजा ही, गुरु–लिंग की पूजा है। शरीर, मन और वाणी से हुई गुरु की सेवा ही ब्रह्म और शास्त्र ज्ञान देती है।[5]

शिवमहापुराण के अनुसार जिह्वा स्त्री लिंग से मन्त्र रूपी शुक्र, कर्ण रूपी योनि में सींचने से मन्त्रपूत शिष्य रूपी पुत्र उत्पन्न होता है।[6] यह शासन का पात्र होने से शिष्य कहलाता है।[7] अतः सुशील शिष्य गुरु को शरीर

---

[1] रु0 सं0, पा0 ख0, 20/32
[2] वही, 34/25
[3] वही, 15/44
[4] को0 रु0 सं0, 43/54, 55
[5] वि0 सं0 18/83, 87
[6] वही, 18/70
[7] वही, 18/87, 88

तक अपर्ण कर देता है। शिष्य मन, वचन और कर्म से गुरु की सेवा करता था। गुरु भी पुत्रवत स्नेह देते थे। लड़कियाँ भी लड़कों के समान रूप से शिक्षा प्राप्त करती थीं। पार्वती के विषय में उल्लेख आया है कि उन्होंने सभी प्राचीन विद्याओं को गुरु से प्राप्त किया।[1] वेद से अलग एक नया धर्म प्रचलन में आ गया था, उसके गुरुओं को ऋषि, यति, आचार्य अथवा उपाध्याय भी कहते थे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में शिक्षा की वैदिक परम्परा ही प्रचलित थी। गुरु का स्थान देवतातुल्य था। शिष्य मन, वचन एवं कर्म से गुरु की सेवा करता था। बदले में गुरु उसे पुत्रवत् स्नेह करते थे एवं विद्यादान करते थे। समाज में पुरुष के साथ–साथ स्त्रियां भी गुरु से शिक्षा ग्रहण करती थी।

साहित्य– शिवमहापुराण के अनुसार भगवान शिव ने हरि को श्वास रूप में वेद प्रदान किया था।[2] और ये पुराण वेद से ही उत्पन्न हुए हैं। इसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का वर्णन है।[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुराण वैदिक साहित्य का ही एक अंश है और वेद के समान ही तत्कालीन समाज में पूज्य और आदरणीय था। इसमें भगवान् के तीनों साधन भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का समावेश है।

बच्चों को वेद की शिक्षा बाल्यकाल से ही दे दी जाती थी। एक स्थल पर नन्दी कहते हैं कि पिता ने पांच वर्ष की अवस्था में ही हमें अंग–प्रत्यंग सहित वेद और शास्त्र पढ़ा दिये।[4] यहां ध्यान देने योग्य ये बातें हैं कि वेद के अतिरिक्त और शास्त्र रहे होंगे जिनका अध्ययन बालकों के लिये अनिवार्य रहता

---

[1] रु0 सं0 ख0, 7/23
[2] रु0 सं0, 9/5
[3] वि0 सं0, 3/3–4
[4] शा0 रु0 सं0, 6/50

होगा। यह शास्त्र संभवतः यन्त्रशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, ज्योतिशास्त्र, सामुद्रिक विद्या आदि था।[1] मन्त्रशास्त्र के पांच अंग बताये गये हैं। चारों वेदों का लोगों को अच्छा ज्ञान था। ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद को प्रमाण और दृष्टान्त के रूप में रखा जाता था जो समाज में इनकी प्रतिष्ठा के द्योतक हैं।[2] एक प्रसंग में कहा गया है कि शिव की पूजा की जाती होगी। वेदों सम्य एवं सुशिक्षित होंगे तभी मन्त्रों के द्वारा शिव की पूजा की जाती होगी। वेदों को पुस्तक का रूप दिया गया जा चुका था क्योंकि राजा दक्ष के यज्ञ में बड़े–बड़े ऋषि वेद की पुस्तकें अपने हाथ में उठायी यानी पढ़े।[3] सामाजिक संस्कार भी वेद–मन्त्रों द्वारा ही होता था। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा अग्नि में आहुति देकर पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ।[4] श्रुति और स्मृति की रचना पुराणों के पहले हो चुकी थी और ये ग्रन्थ धर्मग्रन्थ अथवा यों कहें कि दृष्टान्त के रूप में स्थापित हो चुके थे। शिवमहापुराण में एक स्थान पर कहा गया है कि श्रुति और स्मृति में पतिव्रताओं के धर्म का उपदेश दिया गया है।[5] लोगों में ऐसा विश्वास था कि जो व्यक्ति वेद और स्मृति में निर्धारित कमों का पालन नहीं करता, उसका मनोरथ सिद्ध नहीं होता।[6] भगवान् शिव को पुराणों में 'भारत' कहा गया है। संभवतः यहां महाभारत के लिये भारत शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्कालीन समाज में महाभारत

---

[1] रु0 सं0, स0 ख0, 23/51–54
[2] रु0 सं0, 13/57
[3] रु0 सं0, स0 खं0, 27/15
[4] रु0 सं0, पा0 ख0, 49/1
[5] रु0 सं0, पा0 ख0 24/15
[6] वि0 सं0, 44/21

को अज्ञान नाशक के रूप में स्वीकार किया जाता था। तभी शिव को पुराणों में भारत कहा गया है।[1] पद्मपुराण में भी महाभारत के इसी रूप का वर्णन है।[2]

कथा–साहित्य का संभवतः पूर्ण विकास हो चुका था। क्योंकि सम्पूर्ण शिवमहापुराण में उपदेश के लिये छोटे–छोटे कथानकों का प्रयोग किया गया है। शौनक की सूतजी से कहते हैं कि आप धन्य हैं जो शिव को शक्ति बढ़ाने वाली कथा हमें सुनायी।[3] वैसे भी कथा का साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान है।

सुन्दर स्रोत्रों की रचना होती थी। शंकर ने सन्ध्या से कहा कि मैं तुम्हारी तप पूजा एवं श्रेष्ठ स्तोत्र से प्रसन्न हूँ।[4] ब्रह्मा एवं विष्णु ने भी भगवान की प्राथ्रना सुन्दर वाणी में की। यह स्तुति भी सुन्दर स्तोत्र में हैं। भगवान के लिये बहुतसे सुन्दर विशेषणों का प्रयोग किया गया है। ये स्तोत्र अवश्य ही व्याकरण के नियमों पर आधारित रहते होंगे। पर विष्णुपुराण में किसी व्याकरण का उल्लेख नहीं आया है।

वि0 संहिता में कहा गया है कि शिवमहापुराण में वेदान्त और विज्ञान प्रधान रूप से भरे हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन है।[5] इससे स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनशास्त्र एवं विज्ञान का विकास हो चुका था। वेदान्तदर्शन, सांख्यदर्शन का समाज में विशेष प्रचलन रहा होगा। शिव को वेदान्त एवं पार्वती को सांख्यदर्शन का ज्ञान बताया गया है।[6] संभव शैव वेदान्त को एक शाक्त सांख्यदर्शन को मानते होंगे। शिव जब वेदान्त का उपदेश पार्वती

---

[1] रु0 सं0, यु0 सं0, 2/42
[2] पद्म पु0, 5/1/42
[3] शि0 पु0 मा0, 5/1
[4] रु0 सं0, स0 खं0, 6/30
[5] वि0 सं0, 2/66
[6] रु0 सं0, प0 खं0, 2/68

को देते हैं तो पार्वती उन्हें साख्य द्वारा निरुत्तर कर देती हैं।[1] संभवतः यह सांख्यदर्शन के वर्चस्व को सिद्ध करता है। वैसे तो शिवमहापुराण शैवदर्शन का उत्कृष्ट ग्रन्थ है ही।

एक स्थान पर मुण्डिक को कहा गया है कि तुम श्रुति एवं स्मृति से विरुद्ध वर्णाश्रम धर्म से रहित सोलह हजार की संख्या वाले मायामय, कर्मवाद अपभ्रंश शास्त्र को रचो, फिर उसका विस्तार हो जायेगा। मैं तुम्हें उस शास्त्र को बनाने की शक्ति देता हूँ।[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में कुछ ऐसे शास्त्रों की रचना होने लगी थी जो वैदिक साहित्य की लीक से हट कर थी। इन शास्त्रों को संख्या सोलह हजार कही गयी है। इसे कर्मवादभय कहा गया है। अर्थात् इन शास्त्रों में कर्म को प्रधानता दी गयी होगी। इन्हें अपभ्रंश शास्त्र भी कहा गया है अर्थात् ये संस्कृत के ग्रन्थ नहीं होंगे जब कि वैदिक ग्रन्थों की भाषा संस्कृत होती थी। संभवतः उपरोक्त पंक्ति समाज में पनप रहे श्रमण साहित्य की ओर एक कटाक्ष है जो ब्राह्मण साहित्य के विरुद्ध था।

साहित्य के माध्यम भाष, के बाद हमें लिपि पर ध्यान देना होगा। लिपि यही देवनागरी थी। इस लिपि का उदगम–स्थल भी शिव को ही माना गया है। शिवमहापुराण के एक कथानक में बताया गया है कि भगवान जब युद्ध क्षेत्र में ज्योतिलिंग के रूप में प्रकट हुए तब उस लिंग का मस्तक अकार था, ललाट दीर्घ अकार था। इकार दक्षिण नेत्र एवं ईकार बांया नेत्र था। उकार दाहिना कान तथा ऊकार बांया कान था। इसी प्रकार उस लिंग का आकार मस्तक अक्षरमय था।[3] भगवान् शिव के ज्योर्तिंग माने जाते थे। श्रुति में लिखा है

---

[1] वही, 13/22–34
[2] रु0 सं0, यु0 खं0, 4/10, 11
[3] रु0 सं0, 31/40

कि 'सर्वोहि वांगादि प्रपंच ओंकार प्रभव' अर्थात् वाणी का रस सब प्रपंच ओंकार से ही प्रकट होता है।

वैदिक कालीन अन्य ग्रन्थों यथा ब्राह्मण, अरण्यक आदि का कोई उल्लेख यहां नहीं मिलता है, पर उपनिषद् का उल्लेख आया है। शिवमहापुराण को वेद के सार से उत्पन्न उपनिषद् रूप का कहा गया है। कहने का तात्पर्य है कि वेद के साथ अन्य वैदिक ग्रन्थों का भी अध्ययन–अध्यापन होता था। महाकाव्यों में महाभारत के लिये भारतशब्द का उल्लेख हुआ है और अर्जुन तथा कृष्ण का प्रसंग भी आया है। रामायण का नाम कहीं भी नहीं आया है पर प्रसंगवश कहीं–कहीं राम, लक्ष्मण, सीता एवं हनुमान का उल्लेख अवश्य हुआ है। हनुमान को शिव का अंश बताया गया है।

विज्ञान– शिवमहापुराण के अध्ययन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिक्षा, साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्र में तत्कालीन समाज ने पर्याप्त विकास कर लिया था। विज्ञान का कोई भी क्षेत्र चाहे वह भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, भूगर्भ अथवा ज्योतिष हो, अपने उत्कर्ष पर था। तत्कालीन अन्य ग्रन्थों एवं पुराणों से भी इनकी पुष्टि होती है।

विज्ञान कितना उन्नति कर चुका था, इसका एक दृष्टान्त यह है कि कोई व्यक्ति बिना लक्षित हुए कहीं भी उपस्थित हो सकता था, भ्रमण कर सकता था। सन्ध्या जब मेघातिथि मुनि के आश्रम में जाती हैं तो वहां शिव आशीर्वाद के फलस्वरूप उसे कोई नहीं देख पाता है। इसी प्रकार ऋषि–मुनि आकाश मार्ग से विचरण करते थे। सप्तऋषि बिना किसी यन्त्र की सहायता से आकाश मार्ग द्वारा हिमालय के पास पहुंचे।[1]

---

[1] रु0 सं0, पा0 खं0, 43/32

समुद्र के पानी में नमक है, इसका ज्ञान लोगों को था। भगवान् शंकर जिस नेत्र–अग्नि से इन्द्र को भस्म करना चाहते थे, उस अग्नि को लवण समुद्र में फेंक दिया।[1] तात्पर्य यह है कि रसायन विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान उस समय लोगों को था।

भूगर्भ विज्ञान भी अपने उत्कर्ष पर था। ब्रह्माजी का यह कथन कि लिंग का निर्माण पद्मराग, सोना, मणि, इन्द्रनील, चांदी, पीतल, मिट्टी, स्फटिक, ताम्बा, माती, रत्न, चन्दन, मूंगा, मक्खन, भस्म, दधि, पिट्ठी, पारे आदि से किया जाता है।[2] तत्कालीन धातु विज्ञान का द्योतक है। लोगों का ऐसा विश्वास था कि कैलासपर्वत में अनेक धातुयें हैं और यही कारण है कि यह विचित्र दिखायी देता है।[3] आधुनिक खोंजों से यह सिद्ध हो रहा है कि हिमालय में अनेक प्रकार के खनिज हैं। लोहा, चुम्बक–पत्थर के तरफ आकर्षित होता है, इसका ज्ञान लोगों को था।[4]

चिकित्सा विज्ञान की उन्नति तो इस बींसवी शताब्दि की वैज्ञानिक उपलब्धि को बहुत पीछे छोड़ देता है। सहसा विश्वास ही नहीं होता कि चिकित्सा विज्ञान इतनी उन्नति कर सकता है। मनुष्य के शरीर में पशु के सिर को जोड़ने का प्रसंग तो कल्पना ही प्रतीत होती है। प्रसंग आया है कि राजा दक्ष के धड़ में बकरे का सिर जोड़ा गया और वे जीवित हो गये।[5] अपनी इच्छानुसार पुत्र या पुत्री उत्पन्न किया जा सकता था। दक्ष ने सुन्दर मुहूर्त में अपनी पुत्री का गर्भाधान किया।[6] ऐसे प्रसंग रामायण एवं महाभारत में भी प्राप्त

---

[1] रु0 सं0, यु0 खं0, 50/13
[2] रु0 सं0, 12/30–36
[3] रु0 सं0, स0 खं0, 40/42
[4] रु0 सं0, 3/1
[5] रु0 सं0, स0 खं0, 26/42
[6] रु0 सं0, स0 खं0, 14/14

होते है। औषधि ऐसी थीं कि मृत व्यक्ति भी जीवित हो जाते थे। देव–दानव युद्ध में अगिरा द्रोणाचल पर्वत से दिव्य औषधि लाकर देवताओं को जीवित कर देते थे। निश्चय ही यह औषधि जड़ी–बूटियों एवं वनस्पतियों से बनायी गयी होगी क्योंकि द्रोणाचल पर्वत का प्रसंग आया है। इसी प्रकार मृत राक्षसों को उनके गुरु शुक्राचार्य संजीवनी विद्या द्वारा जीवित कर देते थे।[1] युद्ध में क्षत–विक्षत शरीर के टुकड़ों को एकत्रित कर अपने कमण्डल से जल छिड़क कर जीवित कर देना कुछ अनोखा सा लगता है। शुक्राचार्य मृत्युंजय विद्या के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इन्होंने दधीचि ऋषि के टूटे हुए को जोड़ दिया था।[2] इन सब्र तथ्यों को देखकर सोचना पड़ता है कि चिकित्सा विज्ञान कितना उन्नत रहा होगा।

सामुद्रिक विद्या यानी हस्तरेखा देकर भविष्य बताने वाली विद्या का समाज में काफी प्रचलन था। हस्तरेखा विज्ञ हाथ की रेखाओं को देखकर व्यक्ति के स्वभाव उसके जीवन के उतार–चढ़ाव, धन सम्पदा आदि के विषय में ठीक–ठीक बता देते थे। नारद पार्वती का हाथ देखकर उनके होने वाले पति का पूर्ण स्वरूप बता देते हैं।[3] हाथ दिखाने का प्रसंग अनेकों स्थानों पर आता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हस्त ज्योतिष पर लोगों की प्रबल आस्था थी। नारद विश्वानर के पुत्र गृहपति का हाथ देखकर उसके लक्षण एवं भविष्य बताते हैं।[4] इसी प्रकार बालक जालन्धर के विषय में ब्रह्मा उसके द्वारा होने वाले कर्मों का सही–सही वृतान्त बता देते हैं।[5] मित्र और वरुण के

---

[1] रु0 सं0, य0 खं0, 47/35
[2] रु0 सं0, स0 खं0, 20/38
[3] रु0 सं0, पा0 खं0, 8/6, 8, 11
[4] श0 रु0 सं0, 14/42
[5] रु0 सं0, य0 खं0, 14/23

नन्दी की हस्तरेखा बता दिया था कि उसकी आयु अल्प है और यह बालक अधिक से अधिक एक वर्ष तक जीवित रह सकेगा।[1]

ज्योतिष विद्या का अच्छा ज्ञान लोगों को था और इसे एक वृत्ति के रूप में अपनाया गया था। शिव जब ब्राह्मण वेश में हिमालय के यहां पहुंचते हैं तो अपना परिचय ज्योतिष वृत्ति अपनाने वाले ब्राह्मण के रूप में देते हैं।[2] ग्रहण और संक्रान्ति काल का अच्छा ज्ञान लोगों को था। मकर संक्रान्ति, चंन्द्रग्रहण एवं सूर्य–ग्रहण को किया हुआ कर्म दस गुना फल देता है, ऐसे लोगों का विश्वास था।[3] चन्द्रमा के उदय के समय समुद्र में वृद्धि होती है।[4] सूर्य आदि ग्रह हैं।[5] द्विपों की संख्या सात बतायी गयी है।[6] ब्राह्माण्ड में चौदह लोक हैं तथा ब्रह्माण्ड का विस्तार 50 करोड़ योजन है यानी 2000000000 कोस है।[7] इन सब तथ्यों को देखते हुए यह अनुमान लगाना पड़ता है कि खगोल विद्या का ज्ञान बहुत ही अच्छा था।

ग्रहों का उचित योग जीवन को सुखमय तथा समृद्धि से पूरित रखता है, ऐसा विश्वास था। स्वयं शिवा कहती है कि जिस समय दक्ष की पुत्री थीं उस समय अपने (शिव) मुझ से ग्रहों के उचित स्थान में न होने पर विवाह किया था, अतः हमलोग बिछुड़ गये।[8] विवाह एवं गृह प्रवेश जैसे शुभ कर्म ज्योतिष के अनुसार शुभ मुहूर्त देखकर किये जाते थे। वशिष्ठ हिमवान को समझाते हैं कि सप्ताह भर बाद अति शुभ मुहूर्त आयेगा जिसमें लग्न का स्वामी

---

[1] श0 रु0 सं0, 53/6
[2] रु0 सं0, पा0 ख0, 31/41
[3] वि0 सं0, 15/9
[4] वि0 सं0, 8/14
[5] वही, 14/40
[6] रु0 सं0, कु0 खं0, 22/18
[7] रु0 सं0, पा0 खं0, 13/29
[8] वही, 35/58, 59

लग्न में स्थित रहेगा। चन्द्रमा बुध के साथ रहेगा आदि। अतः आप इस मुहूर्त में पार्वती एवं शिव का विवाह सम्पन्न करावें।[1] इसी प्रकार शिव अपने नये गृह कैलाश में शुभ मुहूर्त में प्रवेश करते हैं।[2]

उपरोक्त तथ्यों एवं प्रमाणों को देखते हुए यह अनुमान सहज ही हो जाता है कि तत्कालीन समाज ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्र में बहुत ही उन्नति कर चुका था।

---

[1] रु0 सं0, 38/20
[2] रु0 सं0, 35/18